अथ सर्वशेषः

(मूल) तद्यदाहुः साकमेधैर्वा देवा वृत्रमघ्नन्, तैर्वैव व्यजयन्त येयमेषां विजितिस्ताम् इति। सर्वैर्ह त्वेव देवाश्चातुर्मास्यैर्वृत्रमघ्नन्। सर्वैर्वैव व्यजयन्त येयमेषां विजितिस्ताम् ॥१॥

ते होचुः —'केन राज्ञा केनानीकेन योत्स्यामः' इति। स हाग्निरुवाच—'मया राज्ञा, मयाऽनीकेन' इति। तेऽग्निना राज्ञा,अग्निनाऽनीकेन चतुरो मासः प्राजयन्। तान् ब्रह्मणा च त्रय्या च विद्यया पर्यगृह्णन् ॥२॥

ते होचुः—'केनैव राज्ञा; केनानीकेन योत्स्यामः' इति। स ह वरुण उवाच—'मया राज्ञा मयाऽनीकेन' इति। ते वरुणेनैव राज्ञा वरुणेनानीकेनापरांश्चतुरो मासः प्राजयन्। तान् ब्रह्मणा चैव त्रय्या च विद्यया पर्यगृह्णन् ॥३॥

ते होचुः—'केनैव राज्ञा, केनानीकेन योत्स्याम.' इति। स हेन्द्र उवाच—'मया राज्ञा, मयाऽनीकेन' इति। त इन्द्रेणैव राज्ञा, इन्द्रेणानीकेनापरांश्चतुरो मासः प्राजयन्। तान् ब्रह्मणा चैव त्रय्या चैव विद्यया पर्यगृह्णन् ॥४॥

स यद् वैश्वदेवेन यजते अग्निनैवैतद्राज्ञा अग्निनाऽनीकेन चतुरो मासः प्रजयति। तत् त्र्येनी शलली भवति, लोहः क्षुरः। सा या त्र्येनी शलली सा त्रय्यै विद्यायै रूपम्। लोहः क्षुरो ब्रह्मणो रूपम्। अग्निर्हि ब्रह्म। लोहित इव ह्यग्निः। तस्माल्लोहः क्षुरो भवति। तेन परिवर्तयते। तद् ब्रह्मणा चैवैनमेतत् त्रय्या च विद्यया परिगृह्णाति ॥५॥

अथ वरुणप्रघासैर्यजते। वरुणेनैवैतद्राज्ञा वरुणेनानीकेनापरांश्चतुरो मासः प्रजयति तत् त्र्येनी शलली भवति, लोहः क्षुरः। तेन परिवर्तयते। तद्ब्रह्मणा चैवैनमेतत् त्रय्या च विद्यया परिगृह्णाति ॥६॥

अथ यत्साकमेधैर्यजते। इन्द्रेणैवैतद्राज्ञा इन्द्रेणानीकेनापरांश्चतुरो मासः प्रजयति। तत् त्र्येनी शलली भवति, लोहः क्षुरः। तेन परिवर्तयते। तद् ब्रह्मणा चैवैनमेतत् त्रय्या च विद्यया परिगृह्णाति ॥७॥

स यद् वैश्वदेवेन यजते अग्निरेव तर्हि भवति। अग्नेरेव सायुज्यं सलोकतां जयति। अथ यद् वरुणप्रघासैर्यजते वरुण एव तर्हि भवति। वरुणस्यैव सायुज्यं सलोकतां जयति। अथ यत्साकमेधैर्यजते इन्द्र एव तर्हि भवति। इन्द्रस्यैव सायुज्यं सलोकतां जयति ॥८॥

स यस्मिन् ह क्रतावमुं लोकमेति। स एनमृतुः परस्मा ऋतवे प्रयच्छति पर उ परस्मा ऋतवे प्रयच्छति। स परममेव स्थानं, परमां गतिं गच्छति चातुर्मास्ययाजिनमनुविन्दन्ति परमं ह्येव खलु स स्थानं, परमां गतिं चातुर्मास्ययाजी। तदाहुः न गच्छतीति ॥९॥

इति चातुर्मास्यदागाधिकारः

इत्येकपविकानाम द्वितीयं काण्डं समाप्तम्

सर्वशेष

(अनु.) कतिपय याज्ञिक मानते हैं कि देवताओं ने साकमेधों से ही वृत्र का वध किया और उन्हीं साकमेधों से असुरों पर विजय प्राप्त की जो यह उनकी विजय आज दृष्टिगोचर हो रही है। किन्तु याज्ञवल्क्य का कथन है कि केवल साकमेधों से देवताओं ने न वृत्र का वध किया और न असुरों पर विजय प्राप्त की अपितु सभी चातुर्मास्य यागों के द्वारा उन्होंने वृत्र का वध किया और सभी चातुर्मास्यों से असुरों पर विजय प्राप्त की जो उनकी यह विजय आज दृष्टि-गोचर हो रही है ॥१॥

जब असुरों ने देवताओं पर आक्रमण किया तब देवताओं ने कहा कि किस राजा व सेनापति के द्वारा हम असुरों से युद्ध करें। तब अग्नि ने कहा कि मुझे राजा और सेनापति बनाकर आप असुरों से युद्ध करें। तब देवताओं ने अग्नि

को राजा व सेनापति नियुक्त कर संवत्सर के चार मासों (चैत्र, वैशाख, जेष्ठ, आषाढ) को जीत लिया तथा उन्हें ब्रह्मा (अथर्ववेदरूप चित्याग्नि) तथा त्रयी-विद्या (ऋग्यजुःसामरूप प्राणमयी चितेनिधेयाग्नि, अमृताग्नि) के द्वारा परि-गृहीत किया।

तात्पर्य यह है कि पिण्डस्वरूपनिर्मापक अग्नि जिसे कि भूताग्नि, मर्त्याग्नि या चित्याग्नि कहा जाता है, ब्रह्माग्नि कहलाती है। और पिण्ड के केन्द्र में विद्यमान निराकार प्राणाग्नि त्रिवृत्, पञ्चदश व एकविंशरूप तीन विक्रमों के द्वारा क्रमशः घन, तरल व विरल अवस्थाओं में परिणत होकर २१विंशस्तोम तक व्याप्त है। इसे ही प्राणाग्नि, अमृताग्नि व चितेनिधेयाग्नि कहा जाता है। इन्हीं में ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य तथा दो साध्य देवता (अश्विनीकुमार) इन ३३ यज्ञिय देवताओं की स्थिति है। ये सब देवता अग्नि के ही अवस्था-विशेष हैं। अग्नि प्रकाशमय है। प्रकाश ही देवता का स्वरूप है। इस अग्नि की वृद्धि वसन्त ऋतु से ही प्रारम्भ होती है और आषाढ तक पूर्ण वृद्धि हो जाती है। अतः यह कथन सर्वथा उपयुक्त है कि अग्नि को प्रमुख अर्थात् सेनापति बनाकर देवताओं ने असुरों पर विजय प्राप्त की तथा सारे देवताओं को पिण्डा-ग्निरूप ब्रह्माग्नि तथा त्रयीविद्यारूप प्राणाग्नि के द्वारा परिगृहीत किया, सुरक्षित किया। निष्कर्ष यह है कि चैत्र से आषाढ मास तक अग्नि का साम्राज्य है। अतः उस समय वही राजा व सेनापति है ॥२॥

उन देवताओं ने कहा कि किस राजा व किस सेनापति के द्वारा असुरों से युद्ध करें। तब वरुण ने कहा मुझे राजा व सेनापति बनाकर आप युद्ध करें। तब देवताओं ने वरुण को राजा व सेनापति बनाकर आगे के चार मासों (श्रावण से कार्तिक तक के मासों) को जीत लिया। उन्होंने उन मासों को पूर्ववत् ब्रह्मा और त्रयी विद्या के द्वारा परिगृहीत किया।

वरुण भी द्वादश आदित्यों में अन्यतम होने से सूर्य है किन्तु वह आपोमय परमेष्ठिमण्डल में रहता है। अतः उस समय अप्तत्व की प्रधानता है और उसके अन्दर सूर्यरूप वरुण की स्थिति है। इसीलिए इन चार मासों में जल का प्राधान्य रहता है और सूर्य मेघाच्छादित ही रहता है। यहां ब्रह्मा से परमेष्ठच

आपोमय अथर्ववेद तथा त्रयी विद्या से पारमेष्ठ्यमण्डलान्तर्गत त्रयी ऋग्यजुःसाम-रूप त्रयीविद्यामय सूर्यरूप वरुण का ग्रहण है ॥३॥

तदनन्तर देवताओं ने कहा अब किस को राजा व सेनापति बनाकर असुरों से युद्ध करें। तब इन्द्र ने कहा मुझे राजा व सेनापति बनाकर असुरों से युद्ध करें। तब उन्होंने इन्द्र को राजा व सेनापति बनाकर शेष चार मासों (मार्ग-शीर्ष से फाल्गुन तक के मासों) को जीत लिया। उन मासों को उन्होंने ब्रह्मा व त्रयी विद्या के द्वारा परिगृहीत किया। इन चार मासों में शरीर बलिष्ठ रहता है। 'या च का च बलकृतिरिन्द्रकर्मैव तत्'। इस यास्कवचन के अनुसार बल इन्द्र का ही कार्य है। अतः इन मासों में इन्द्र का साम्राज्य माना जाता है। इन्द्र का प्रिय पदार्थ सोम है। इन चार मासों में सोम का ही प्राधान्य है और इसी से इन्द्र बलवान् व बलप्रदाता बनता है।

यहाँ ब्रह्मा से सोम का तथा त्रयी विद्या से ऋग्यजुःसामरूप त्रयीविद्यामय इन्द्रप्राण का ग्रहण है। वैश्वदेवेष्टि में अग्नि की, वरुणप्रघास में वरुण की तथा साकमेधों में इन्द्र की प्रधानता है। इस प्रकार वैश्वदेवादि चातुर्मास्य यागों द्वारा तत्तच्चातुर्मास्य यागों में प्रधानभूत अग्नि, वरुण व इन्द्र द्वारा संवत्सर के सब मासों को जीत लिया। संवत्सराग्नि को आत्मसात् कर लिया ॥४॥

जो यह यजमान वैश्वदेव याग से यजन करता है वह अग्निरूप राजा व सेनापति के द्वारा चार मासों को जीत लेता है।

इन चातुर्मास्यों में तीन स्थानों में श्वेत वर्ण वाले श्वाविन्नामक मृग की रोमावली को जिसे कि शलली कहते हैं, रखा जाता है तथा ताम्बे का छुरा रखा जाता है। इनमें श्येनी शलली त्रयी विद्या का स्वरूप है तथा ताम्बे का छुरा लाल होने से ब्रह्माग्नि का स्वरूप है। ब्रह्माग्नि चूँकि लोहित वर्ण का सा होता है इसलिए लोहित वर्ण का छुरा ब्रह्माग्नि का प्रतिनिधि है। त्रयीविद्यारूप श्येनी शलली तथा ब्रह्माग्निरूप लोहित वर्ण वाले क्षुर को यजमान पर फिराकर निदानेन यजमान को ब्रह्माग्नि तथा त्रयी विद्या के द्वारा परिगृहीत कर देते हैं ॥५॥

तब वह यजमान वरुणप्रघासों से यजन करता है। इससे वह यजमान वरुणरूप राजा व सेनापति के द्वारा आगे के चार मासों को जीत लेता है। यहाँ भी पूर्ववत् श्येनी शलली व लोहित वर्ण का छुरा रखा जाता है। उन दोनों को अध्वर्यु यजमान पर घुमाता है। इस से वह ब्रह्माग्नि व त्रयी विद्या के द्वारा उसे परिगृहीत करता है ॥५॥

तब वह साकमेधों से यजन करता है। वह इस प्रकार इन्द्र राजा व सेनापति के द्वारा आगे के चार मासों को जीत लेता है। यहाँ भी पूर्ववत् श्येनी शलली व लाल वर्ण का छुरा रखा जाता है। इन दोनों को यजमान पर घुमाता है। इससे ब्रह्माग्नि व त्रयी विद्या द्वारा यजमान को परिगृहीत करता है ॥७॥

वह यजमान वैश्वदेव से यजन करता है तो वह अग्निरूप हो जाता है। अग्नि के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है। अग्नि के लोक को प्राप्त कर लेता है। और यदि वरुणप्रघासों से यजन करता है तो वह वरुणस्वरूप बन जाता है। वह वरुण के सायुज्य व सालोक्य को प्राप्त हो जाता है। और यदि साकमेधों से यजन करता है तो इन्द्रस्वरूप बन जाता है तथा इन्द्र के सायुज्य व सलोकता को प्राप्त कर लेता है ॥८॥

वह यजमान जिस ऋतु में परलोक को प्राप्त होता है अर्थात् शरीरत्याग करता है। वह ऋतु इस यजमान को दूसरी ऋतु को प्रदान कर देती है, सौंप देती है और वह ऋतु दूसरी ऋतु को। इस प्रकार वह चातुर्मास्ययाजी परम गति को प्राप्त हो जाता है। इसलिए यह कहा जाता है कि चातुर्मास्य याग करने वाले को उसके सम्बन्धी पुनः प्राप्त नहीं करते। वह परम स्थान व परम गति को प्राप्त कर लेता है। अर्थात् उस का पुनर्जन्म नहीं होता ॥इति॥

द्वितीय काण्ड समाप्त

फलश्रुतिप्रकरणम्

(भाष्य) याज्ञिक लोगों ने कहा था कि साकमेधों से ही देवताओं ने वृत्र को मारा। एवं साकमेधों से ही (तैरु एव-अपि तैरेव) देवताओं ने उस विजय को प्राप्त किया जो कि आज उनकी सुनी जाती है। परन्तु भगवान् याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हमने माना कि साकमेध इन्द्रसम्बन्धेन और चातुर्मास्यों से प्रबल है, तथापि असुरों को मारने एवं विजय-

लाभ में केवल साकमेध ही कारण हो—यह बात नहीं है। हमारे विचार में केवल साकमेध से ही नहीं, अपितु वैश्वदेव, वरुणप्रघास एवं साकमेध, इन तीनों चातुर्मास्यों से अर्थात् सारे चातुर्मास्यों से ही देवताओं ने वृत्र को मारा एवं सबके द्वारा उस विजिति को प्राप्त किया जो कि विजिति आज इन देवताओं की सुनी जाती है।

"तदुदाहुः—साकमेधैर्वै देवा वृत्रमघ्नन्। तैर्वैव (अपि तैरेव) व्यजयन्त येयमेषां विजितिस्ताम्"।

"सर्वैर्ह स्वेव देवाश्चातुर्मास्यैर्वृत्रमघ्नन्। सर्वैर्वैव (अपि सर्वैरेव व्यजयन्त येयमेषां विजितिस्ताम्" ॥१॥

जिस समय तमोमय प्राण-असुरों ने आग्नेयप्राणप्रधान देवताओं पर आक्रमण किया तो देवताओं ने एक सभा की और उसमें उन्होंने एक प्रश्न रखा कि अब असुर अपने ऊपर आक्रमण कर बैठे हैं। इसलिये अब आप बतलाइये कि हम किस सेनापति से, किस राजा से युक्त होकर असुरों से युद्ध करेंगे। अर्थात् अपना सेनापति कौन होगा, और राजा कौन बनेगा—उसी समय अग्नि बोल उठे—मुझ सेनापति से, मुझ राजा से युक्त होकर आप युद्ध करें। मैं आपका सेनापति बनूँगा और मैं आपका राजा बनूँगा। बस, फिर क्या था। अग्निसदृश सेनापति को प्राप्त कर तद्द्वारा देवताओं ने चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ इन चारों महिनों को जीत लिया। एवं उन देवताओं को ब्रह्म से अर्थात् अथर्ववेद से और त्रयी विद्या से सुरक्षित कर लिया। वेद का किला बनाकर उन्हें उसमें रख लिया। जो भूताग्नि है उसे ब्रह्मवेद किंवा अथर्ववेद कहते हैं। जिस अग्नि में रंग है, वह ब्रह्माग्नि है जिसके लिये 'अग्निं तं मन्येऽत्तं यं यन्ति धेनवः" कहा जाता है। जिसे हम अग्नि कहते हैं वह अथर्वाग्नि कहलाता है जिसका कि स्वरूप लाल है। यह परमेष्ठी में रहने वाला अग्नि है, यही भूताग्नि कहलाता है एवं जो निराकार प्राणाग्नि है, उसे वेद-त्रयी कहते हैं जो स्वयम्भूमण्डल की वस्तु है। चूंकि यह वेदत्रयी अर्थात् प्राणाग्नि निराकार है, अतएव इसका स्वरूप शुद्ध माना जाता है। प्रत्येक पिण्ड में दो प्रकार का अग्नि रहता है—चित्य और चितेनिधेय। जसको हमने भूताग्नि बतलाया था, वही चित्यपिण्ड है, वही ब्रह्म है, वही प्रजापति है। वह पिण्ड का स्वरूप बनाता हुआ पिण्ड के केन्द्र में रहता है। उसी के लिए श्रुति कहती है—

"प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा" ॥

तात्पर्य यह है कि जिससे पिण्ड का स्वरूप बनता है, उसे ही चित्याग्नि किंवा भूताग्नि कहते हैं। यही ब्रह्म कहलाता है। एवं इस वस्तु का ३३ तक जाने वाला जो वषट्-

कारमण्डल है, तत्स्थ अग्नि को चितेनिधेय अग्नि कहते हैं। वह केन्द्र से निकल कर ३३ तक वितत रहता है जिसका कि विशद विवेचन वषट्कारप्रकरण में किया गया है। वही अमृताग्नि, प्राणाग्नि, ऋक्साम और यजुःस्वरूप में परिणत हो जाता है। घनावस्था ऋक् है, तरलावस्था यजु है, विरलावस्था साम है। ऋक् क्या है, यजु क्या है, साम क्या है, इसका विवेचन करना प्रकृत से दूर जाना है। हमें यहाँ केवल इतना ही बतलाना है कि देवता, लोक, वेद सब इसी वषट्कारमण्डल पर आधारित हैं। वसुरुद्रादित्यादि ३३ देवता—इसी वषट्कारमण्डल में रहते हैं जो कि मण्डल वेदत्रयीमय है। पृथिवी का जो साममण्डल है, उसे ही संवत्सर कहते हैं। वह वेदत्रयीमय है एवं पृथिवी का पिण्डस्थ अग्नि ब्रह्म है। बस इस ब्रह्म और उस वेदत्रयी के उदर में सारे देवता रहते हैं। अग्नि की अवस्थाविशेष में ही ३३ देवता रहते हैं। वास्तव में अग्नि ही प्रधान है। वसन्त के प्रारम्भ में वैश्वदेव इष्टि की जाती है एवं तभी से अग्नि का बढ़ाव होता है। अतएव अग्नि को इन चार महिनों का सेनापति बतलाया जाता है। बात सत्य है—चैत्र से आषाढ़ तक अग्नि ही का तो साम्राज्य रहता है। सारे देवता इसी के शासन में रहते हैं।

बस इसी प्राकृतिक विज्ञान को बतलाते हुये भगवान् याज्ञवल्क्य कहते हैं—ते होचुः—केन राज्ञा केनानीकेन योत्स्याम इति। स होवाचाग्निरुवाच—मया राज्ञा मयानीकेनेति। तेऽग्निना राज्ञानीकेन चतुरो मासः प्रायजन्। तान् ब्रह्मणा त्रय्या च विद्यया पर्यगृह्णन् ॥२॥

आषाढ़ के अनन्तर वरुण का साम्राज्य रहता है। आषाढ़ से आश्विन तक वरुण सेनापति रहते हैं। वरुण सूर्य में रहते हैं जैसा कि "उरुं हि राजा वरुणश्चकार" कहा जाता है। "सैषा त्रयी विद्या तपतीति" के अनुसार वरुण भी वेदत्रयीमय है एवं स्वयं अथर्व है क्योंकि अथर्ववेद परमेष्ठी की वस्तु है और परमेष्ठी के देवता वरुण है। बस, इन चार महिनों को वरुण के सेनापतित्व में देवताओं ने जीता—इस अभिप्राय से "ते होचुः" इत्यादि कहा गया है। जो अग्नि का सेनापतित्व था, उसमें वेदत्रयी प्रधान थी और ब्रह्म वेद गौण था एवं वरुण के सेनापतित्व में अथर्ववेद प्रधान है, और वेदत्रयी गौण है ॥३॥

मार्गशीर्ष से फाल्गुन तक इन्द्र का राज्य रहता है। शीतर्तु में शरीर बलिष्ठ रहता है। बल प्रदान करना इन्द्र का काम है जैसा कि यास्कमुनि कहते हैं—

"या च का च वै बलकृतिरिन्द्रकर्म्म एव तत्"।

इस प्रकार ४ महीनों को इन्द्र के सेनापतित्व में देवताओं ने अपने वश में कर लिया। बस इसी अभिप्राय से 'ते होचुः' कहा गया है। इस साकमेध पर आकर शत्रु निःशेष कर दिये गए। अत एव तीनों चातुर्मास्यों में साकमेध का ही अधिक महत्त्व है। इसीलिये तो इस ब्राह्मण के प्रारम्भ में ही—"साकमेधैर्वा देवा वृत्रमघ्नन्" कहा गया है ॥४॥

इस प्रकार से देवताओं ने तीनों चातुर्मास्यों से सारे संवत्सर को अपने वश में कर लिया। तो बस आज जो विद्वान् वैश्वदेव से देवताओं का यजन करता है, वह अग्नि सेना-

पति एवं अग्नि राजा की सहायता से चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ,आषाढ इनचारों महिनों को जीत लेता है। इन चातुर्मास्यों में मृग की रोमावलि अर्थात् मृगचर्म्म रखा जाता है एवं ताम्र का क्षुरा रखा जाता है। जो श्येनी शलली है वह तो वेदत्रयी का स्वरूप है एवं तांबे का क्षुरा ब्रह्मस्वरूप है। मृग वेदस्वरूप कैसे है—यह प्रथमकाण्ड में विस्तृतरूपेण बतला दिया गया है (शत.ब्रा.६ पृ.) अग्नि का स्वरूप लाल है एवं क्षुर भी लाल हो है। अतः निदानेन क्षुर रखा जाता है। देवता इस वेदत्रयी में और ब्रह्म में रहते हैं। अत एव यजमान के ऊपर इन दोनों को फिरा कर निदानेन वेदत्रयी और ब्रह्म से वेष्टित कर लेते हैं। इसी अभिप्राय से कहते हैं—"स यद्वैश्वदेवेन यजते, अग्निर्नवैतद्राशाऽनीकेन चतुरो मासः प्रजयति। तन् श्येनो शलली भवति। लोहः क्षुरः। सा या श्येनो शलली सा त्रय्यै विद्यायै रूपम्। अग्निर्हि ब्रह्म। लोहित इव ह्यग्निस्तस्माल्लोहः क्षुरो भवति। तेन परिवर्त्तयते। तद् ब्रह्मणा चैवैनमेतत् त्रय्या च विद्यया परिगृह्णाति ॥५॥

इसी प्रकार वरुण को अनीक बनाकर श्रावण, भाद्रपद आश्विन, कार्त्तिक ४ महिनों को जीत लेता है ॥६॥

एवमेव इन्द्र को अनीक बना कर, मार्गशीर्ष, पौष, माघ फाल्गुन इन चार महीनों को जीत लेता है ॥७॥

यह यजमान जब वैश्वदेव से यजन करता है, उस समय यह अग्निस्वरूप बन जाता है। तीनों चतुर्मास्यों में से एक न एक में यह अवश्य मरेगा। तो यदि वैश्वदेव के समय में मर जाता है, तो अग्निलोक के सायुज्य एवं सालोक्य को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् अग्निलोक में जाकर अग्निस्वरूप बन जाता है। "स यद्वैश्वदेवेन यजते, अग्निरेव तर्हि भवति। अग्नेरेव सायुज्यं सलोकतां जयति।" वरुणप्रघास से स्वयं वरुण बन जाता है और वरुणलोक को प्राप्त करता है। "वरुणस्यैव सायुज्यं सलोकतां जयति"। एवं साकमेध से इन्द्रलोक को प्राप्त करता है—"इन्द्रस्यैव सायुज्य सलोकतां जयति ॥८॥

यह यजमान तीनों में से किसी न किसी ऋतु में तो मरेगा ही, तो बस जिस ऋतु में वह मरता है, वह उसी लोक में पहुँच जाता है। वह ऋतु उसे दूसरी आगे की ऋतु को सौंप देती है। इस प्रकार क्रमेण वह परम स्थान में पहुँच जाता है। इस प्रकार यह चातुर्मास्ययाजी परमगति को प्राप्त हो जाता है।

भगवान् याज्ञवल्क्य कहते हैं कि जब चातुर्मास्ययाजी परलोक में चला जाता है तो फिर उससे मिलना कभी नहीं हो सकता। वह परम स्थान को एवं परम गति को प्राप्त कर लेता है। अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता—यही तात्पर्य है ॥९॥

इति फलश्रुतिप्रकरणम्
"पञ्चमं ब्राह्मणं समाप्तम्"
ओं शान्तिः। शान्तिः। शान्तिः।
इति माध्यन्दिनीये शतपथब्राह्मणे एकपञ्चिकानाम द्वितीयं काण्डं समाप्तम्।

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१४	सुरात्	सुरान्
७	१	दिक्ष्य	दिक्ष्य
८	६	५	६
८	११	भो	भो
१२	१५	जिनका	दिनका
१४	१८	में	से
३०	२	तदवि	तदविभ्यन्
३५	१५	का	×
४१	१६	चलती	न चलती
७४	१२	प्राणवपानती	प्राणादपानती
७६	२७	जिससे	जिस में
९३	१०	प्राणवपानती	प्राणादपानती
१०२	६	अवयवमय	अवयवमय
१०५	२४	प्राणवपानती	प्राणादपानती
११०	१६	कर कर	भर कर
११०	२१	रूप ते	रूप से
१११	१३	घोरा	घोरा
१२७	१५	दक्षिणा	अर्थात् दक्षिणा
१२७	१६	करता है	करता है अतः 'दक्षिणामिरदक्षयन्'
१२८	२४	अप	अर्थ
१३०	२२	पुरुष के	पुरुष के और
१४७	२१	ऋतु	ऋतु
१८६	६	अग्निहैं	अग्निहैं
१८६	१३	आत्मन्येवा	आत्मन्नेवा
१८७	६	शिवत	शिवत
१८८	१६	प्रजनयष्यश्च	प्रजनिष्यश्च
१८८	२३	विजितं	विजिति
१९०	११	ऋतुरूपा	ऋतुरूपा
१९७	१५	एतद	एतदा
१९८	२६	अग्नि से	अग्नि ने

२११	२६	पिाड	पिण्ड
२२५	१६	डूब	सोम
२३०	६	पानेऽभ्याभवेत्	पानेऽभ्यानवेत्
२३१	२२	६८	२८
२३३	१२	इद	इदं
२३७	६	पुन:	प्रात:
२३६	१२	है	है, इससे पितरों और ओषधियों की सत्ता रहती है तथा हवन करके यज्ञोपशिष्ट को भक्षण करता है उससे मनुष्यों में हवन करता है।
२६१	१६	स्रुचि	स्रुक्
२८०	१६	नैषिध नड राजा	राजा, नैषिध नड,
२८१	१	नड राजा	नड
२८६	२३	यथेच्छ	यथेच्छ भ्रमण करे यही उस अनश्नन् सांवत्सर का उपस्थान है तथा
२८६	२६	अन्वाहार्यं	अन्वाहार्यपचन
२६८	४	बाबिल	बाबिल
३१४	२४	प्राणादपानती	प्राणादपानतो
६७६	१२	तीनों में	तीनों सूर्य
३६०	२२	मास्येव	मास्येन
३८१	१५	तद	तद्
३६३	२२	ऊँचा	नीचा
३६४	१३	ऊँचा	नीचा
४१४	२	अन्त	अन्न
४१५	२०	ऊँचा	नीचा
४२१	११	आग्नेयादि	आग्नेयादि
४३६	१०	इष्ट	इष्टि
४४६	२३	विष्णुदेवत्य	विष्णुदेवत्य
४५१	१६	अन्नदेवता	अन्य देवता
४६८	२१	एक	एक एक
४७३	१३	मिशुन	मिथुन
४७३	१८	देवताओं	वाजिदेवताओं
४७५	१	दाक्षायणेष्टि	दाक्षायणेष्टि:
५०५	२८	ज्योतिष्टिम	ज्योतिष्टोम
५२१	१६	सोम्व	स्तौम्य
५२५	३	माण	प्रमाण

५२४	१०	प्रजनमिता	प्रजनयिता
५३५	२६	विश्वेदेव	विश्वेदेव
५३६	१६	कल्प	कल्प्य
५५३	१२	अषाम्बदु	अषाम्मर्दु
५५४	११	यद	यद्
५५६	२	ऐन्द्राग्नेन	ऐन्द्राग्नेन
५५७	२	भिषारयति	भिषारयति
६५७	१८	संवदव	संवदस्व
५५६	३	व	व
५६६	२	में	के
५६६	३	संश्लेषित	विश्लेषित
५६६	५	श्रष्टि	इष्टि
५६६	१५	सृष्ट	विलोषित
५६६	२७	की	सम्बन्धी
६१२	६	॥२॥	॥१॥
६२४	१८	४॥	×
६२४	१६	महिनों	चार महिनों
६४७	१	तेवा	देवा
६४७	१८	ह्वेय	ह्वेव
६५०	१५	नेद्यज्ञस्य	नेदृयज्ञस्य
६५०	१६	तस्माद्	तस्मात्
६५१	३	प्रत्यनक्त्यवदानानि	प्रत्यनक्त्यवदानानि
६५४	६	वाकोय	वाकाय
६६६	१६	स्रस्मि	सक्ति
६८५	३	अपहरन्त	हरण
७००	१०	पितुकम्म	पितुकर्म्म
७०६	८	तयाऽर्यैष	तयाऽर्यैष
७०८	२३	यजमान	यजमान
७१०	१०	उत्तर	×
७१४	११	से	में

VERIFIED-2001

गुरुगङ्गेश्वर ग्रन्थमाला

प्रकाशित अन्य ग्रन्थ

प्रसून १—सद्गुरु स्वामी गङ्गेश्वरानन्द के लेख तथा उपदेश
सम्पादक—आचार्य शंकरानन्द स्वामी

प्रसून २—योगेश्वर गुरु गङ्गेश्वर, लेखिका—रतन फौजदार

प्रसून ३—मायाज्ञास्त्रम् सटीकम्

प्रसून ४—सद्गुरु स्वामी गङ्गेश्वरानन्द के लेख तथा उपदेश

प्रसून ५—आनन्दवृन्दावन चम्पू

प्रसून ६—आदर्श महात्मा स्वामी शान्तानन्द जी

प्रसून ७—वेदोपदेशचन्द्रिका लेखक—स्वामिश्रीगङ्गेश्वरोदासीन
सम्पादक—स्वामिगोविन्दानन्द वेदान्ताचार्य

प्रसून ८—अभूतपूर्व ग्रन्थरत्न 'भगवान् वेद'
सम्पादक—वेददर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर श्री स्वामी गङ्गेश्वरानन्द उदासीन

प्रसून ९—वेदगीता (यन्त्रस्थ)

प्रसून १०—गोपीगीत

प्रसून ११, १२, १३, १४ (यन्त्रस्थ)

प्रसून १५-शुक्लयजुर्वेद-माध्यन्दिनसंहिता-तृतीयाध्याय-समन्वयभाष्यम्
भाष्यकार—वेददर्शनाचार्य महामण्डलेश्वर श्री स्वामिगङ्गेश्वरानन्दोदासीन
सम्पादक—श्री गुरजनदास स्वामी, एम०ए०, आचार्य

LIBRARY, TIRUPATI. * KENDRIYA SANSKRIT VIDYA PEETHA
22159
Q1 7 : 9 -
N72